चेन्नई (भारत)
अगस्त १७, २०००

सन्देश संख्या २७

# प्रार्थना और ध्यान

प्रार्थना में मन के अन्दर से उत्पन्न एक माँग होती है। यह एकान्तता की पीड़ा तथा आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व की व्यथा है, जिसमें ईश्वर ही नदारद हैं। वास्तव में, उनका ईश्वर धर्म मीमांसकों के तर्कजनित वाद–विवाद का प्रतिङ्गल है।

ध्यान में निरासक्ति होती है। यह एक निर्मनावस्था है। यह एकाकित्व एवम् आत्म–शून्यीकरण की एक प्रक्रिया है जिसमें अनाम अस्तित्व की एक अद्भुत उपस्थिति रहती है। इसे 'धर्म के ठेकेदारों' के उस षडयंत्र से कोई मतलब नहीं होता जो ईश्वर के नाम पर विभिन्न प्रकार की मान्यताओं, मताग्रहों आदि के आधार पर मानव–मानव के बीच द्वन्द्व पैदा करते हैं। सत्य के प्रति प्रेम के ङ्गलस्वरूप इस एकाकित्व में भी संवाद जारी रहता है और एकान्तता की पीड़ा नही महसूस होती है।

विभेदकारी चित्तवृत्ति से प्रार्थना का उदय होता है। निष्कपट एवं निरवयव चैतन्य से ध्यान प्रस्ङ्गुटित होता है। प्रार्थना में चाहना और पाना अन्तर्निहित है जब कि ध्यान एक परमानन्द एवं मंगलमय अवस्था है।

क्रियायोग का अभ्यास साम्यावस्था में रहने के लिये किया जाता है। यही ध्यान है, जो न तो मन का संकेन्द्रण है और न ही उसकी अनुबंधित प्रतिक्रियाओं से प्राप्त अनुभव । ध्यान तथ्य (सत्) में एक गति है जबकि प्रार्थना तत्व (सिद्धांत) में एक गतिरोध। जहाँ प्रार्थी (व्यक्तिपरक सत्ता) है वहाँ कोई प्रार्थना नहीं है। यही कारण है कि प्रार्थना के द्वारा केवल दुर्दशा, विरोधाभास एवं व्यवसाय को ही प्रोत्साहन एवं सम्पोषण मिलता है।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः
सत्य समाधि रूपान्तरण उत्कष